राज्य क्या नहीं सीखता हैः राजस्थान में वन अधिकारों का कुरूप चेहरा

–वीरेन लोबो

(www.headlineseveryday.com में 10 अप्रैल, 2018 को प्रकाशित)

हाल ही में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति सम्बन्धी कानून को लागू करने के बारे में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के ख़िलाफ देशव्यापी प्रदर्शन हुए, जो कि प्रभावित समूहों एवं समुदायों की इस भावना को प्रकट करते हैं कि राज्य द्वारा कानूनों एवं प्रावधानों का प्रभावी कार्यान्वयन सही मंशा के साथ अक्षरशः नहीं किया जाता है। हाशिये पर मौजूद समुदायों के लिए कल्याणकारी कानूनों और अन्य उपायों का कार्यान्वयन नहीं होना या बहुत सुस्त होने का चलन और यही ढर्रा बने रहना साबित करता है कि ये मामले अलग से या कोई अपवाद नहीं थे।

वन नीति, 2018 का मसविदा, जो कि जनता की राय के लिये प्रस्तुत किया गया है, कॉर्पोरेट को केन्द्रीय भूमिका में लाता है और प्रभावित समुदायों को अलग करता है। अब तक वन अधिकार कानून, 2006 को भी वन में निवास करने वाले समुदायों एवं प्रथम जनों के साथ हुए ऐतिहासिक अन्याय को सही करने में अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हुए हैं।

इस सन्दर्भ में, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने 3 अप्रैल, 2018 को जारी निर्देश में इस चिन्ता को प्रकट किया है। आयोग ने जन अधिकार कार्यकर्त्ताओं के इस तर्क को सही ठहराया है कि सारे देश में वन अधिकार देने से मनमाना इन्कार किया जा रहा है; विशेषकर राजस्थान में अनुसूचित जनजाति के 32,786 लोगों को वन अधिकार प्रदान नहीं किए गए और जिनका मामला आयोग के सामने विचाराधीन है। राजस्थान सरकार ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि राज्य ने 'पूरी सावधानी के साथ वैधानिक प्रावधानों एवं सक्ष्म प्राधिकारियों द्वारा जारी दिशा–निर्देशों की अनुपालना की है।'

इसके प्रत्युत्तर में 'याचिकाकर्त्ता ने टिप्पणियों सहित अपने विस्तृत जवाब में राज्य के प्राधिकारियों के विरुद्ध गम्भीर आरोप लगाये, जिन्होंने आदिवासियों के कानूनसम्मत दावों को कथित रूप से अस्वीकार कर दिया। परिणामस्वरूप, राजस्थान राज्य के कई ज़िलों में रहने वाले जनजातियों के पीड़ित लोगों के मानवाधिकारों का हनन हुआ है।' जवाब पर ध्यानपूर्वक विचार करने के बाद मानवाधिकारों की शीर्ष संस्था ने निर्णय दिया– 'इस मामले में गम्भीरता के साथ जाँच करने के लिए एक प्रति मुख्य सचिव को प्रेषित की जाए तथा अधिनियम के तहत् लाभार्थियों को सभी वैधानिक लाभ प्रदान किए जायें, जिसके लिए भविष्य में अनुपालना हेतु कड़े दिशा–निर्देश जारी किए जायें। हर हाल में छह हफ़्तों में अनुपालना हो।'

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में प्रस्तुत मामला 2015 में लेखक द्वारा 'नागरिक समाज एवं तृणमूल स्तर के आन्दोलनों के साथ परस्पर वार्ता के माध्यम से राजस्थान में वन अधिकार अधिनियम का कार्यान्वयन सुकर बनाना' विषयक अध्ययन पर आधारित है।

इस अध्ययन में राजस्थान की पारिस्थितिकी और इस सन्दर्भ में वनों के महत्व का वर्णन किया गया है। अध्ययन बताता है कि वन अधिकार कानून के अन्तर्गत जो अधिकार दिए जाने थे उनका केवल 0.86 प्रतिशत ही दिया गया है और इनमें भी सामुदायिक वन अधिकार का एक भी दावा नहीं है। अध्ययन इस ओर भी इंगित करता है कि जो कुछ व्यक्तिगत वन अधिकार दावों पर कार्यवाही हुई भी है उनमें भी मनमाने तरीके से दावों को अस्वीकार किया गया है।

इन निष्कर्षों के परिणामस्वरूप, अपने अधिकारों के लिए समुदायों को अधिकार सम्पन्न बनाने की बहुआयामी प्रक्रिया के एक भाग के तौर पर जन अधिकार कार्यकर्त्ता सुभाष महोपात्रा ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में मामला दर्ज कराया था। इस एक्शन रिसर्च के दौरान मालूम हुआ कि दावों को अस्वीकार करने का एक प्रमुख कारण यह है कि माँगी गई भूमि संरक्षित क्षेत्रों एवं अभयारण्यों में स्थित है। राजस्थान सरकार, केन्द्र सरकार से पूछा रही है कि क्या अभयारण्यों में वन अधिकार प्रदान किये जा सकते हैं, जबकि इस सम्बन्ध में पहले ही स्पष्टीकरण दिया जा चुका है जिसे राज्य सरकार द्वारा नज़रअन्दाज़ किया गया है। समुदायों एवं नागरिक समाज की ओर से बार–बार विरोध प्रदर्शन करने के परिणामस्वरूप आख़िरकार यह स्वीकार किया गया कि अभयारण्यों में भी वन अधिकार दिये जा सकते हैं। यद्यपि यह स्वीकार कर लिया गया है कि सामुदायिक वन अधिकार दिये जा सकते हैं, तथापि समुदायों के द्वारा दायर किए गए दावे अब तक लम्बित पड़े हुए हैं।

इन स्थितियों के मद्देनज़र यह तय किया गया कि मनमाने ढंग से अस्वीकृत किए गए दावों पर ध्यान केन्द्रित किया जाए। लेखक की 2015 की रिपोर्ट में प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर यह साबित होता है कि राजस्थान में वन अधिकार नहीं देना लोगों को उनके हक से वंचित करने एवं उनका हक नकारने के उदाहरणों में से एक है। सरकार लम्बे समय तक इस शिकायत पर और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के दिशा–निर्देशों पर शान्त रही, किन्तु जब अ.जा./ज.जा. (अत्याचार निरोधक) अधिनियम के उन प्रावधानों को सामने लाया गया जिनके तहत अ.जा./ज.जा. समुदायों पर इरादतन लापरवाही को अपराध माना गया है और जिसकी जवाबदेही तय करने वाले प्रावधान हैं, तब जाकर राज्य सरकार ने मानवाधिकार आयोग को जवाब दिया। राजस्थान सरकार के जवाब को देखते हुए याचिकाकर्त्ता ने नागरिक समाज के प्रतिनिधियों और स्थानीय समुदायों से सम्पर्क कर 'टिप्पणियों सहित अपना विस्तृत जवाब' दिया जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने गेन्द फिर से राजस्थान सरकार के पाले में डाल दी है। लाख टके का सवाल यह है कि क्या सरकार राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के दिशा–निर्देशों की पालना करेगी या नहीं?

निश्चित रूप से, राज्य सत्ता के कुरूप चेहरे से मुखौटा उतर चुका है। सरकार प्रभावित समुदायों को अधिकार प्रदान करने से जान–बूझकर इन्कार कर रही है। राज्य को जवाबदेह बनाकर ही न्याय सुनिश्चित किया जा सकता है। किन्तु यह आश्चर्यजनक नहीं है कि राज्य द्वारा सीख लेने की बजाय कानून की अवहेलना की जा रही है, जिससे कुशासन को बढ़ावा मिलता है और जो लोकतन्त्र के लिए ख़तरा है। क्या इसका कोई समाधान है?

(लेखक पारिस्थितिविज्ञानी हैं और इन्स्टीट्यूट ऑफ इकोलॉजी एण्ड लाइवलीहुड एक्शन के प्रमुख हैं)